स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

श्रीमद्भागवत-पत्रिका

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्माको आनन्द प्रदायक । सब धर्मोंका श्रेष्ठ रीतिसे पालन करते जीव निरन्तर
भक्ति अधोक्षजकी अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥ किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ।

वर्ष १८ | गौराब्द ४८६, मास—श्रीधर २२, वार—कारणोदशायी वृहस्पतिवार, ३२ श्रावण, सम्वत् २०२९, १७ अगस्त १९७२ | संख्या ३

अगस्त १९७२

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

श्रीवसुदेवकृतं श्रीरामकृष्णस्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत १०।८५।३–२०)

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् सङ्कर्षण सनातन ।
जाने वामस्य यत् साक्षात् प्रधानपुरुषौ परौ ॥ ३ ॥

पूर्व समयमें मुनियोंके मुखसे अपने दोनों पुत्रोंके माहात्म्य-सूचक वाक्य श्रवण कर उनके अद्भुत चरित्रमें विश्वासयुक्त होकर उनका सम्बोधन करते हुए श्रीवसुदेव महाराजने इस प्रकारसे उन दोनोंकी स्तुति की थी—

हे महायोगिन् कृष्ण ! हे सनातन-स्वरूप संकर्षण ! इस जगतके साक्षात् कारणरूप जो प्रकृति और पुरुष हैं, मैंने आप दोनोंको उनके भी कारणस्वरूप परमेश्वरके रूपमें जान लिया है ॥ ३ ॥

यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद्यद् यथा यदा ।
स्यादिदं भगवान् साक्षात् प्रधान-पुरुषेश्वरः ॥ ४ ॥

घट, पट आदि जो समस्त पदार्थ जिस स्थानमें, जिस समयमें, जिस प्रकारसे, जिसकेद्वारा, जिसके सम्बन्धमें, जिसके उद्देश्यसे उत्पन्न होते हैं, प्रकृति और पुरुषके अधीश्वर रूप आप ही साक्षात् उन सबके मूल स्वरूप हैं। अर्थात् वे आपके ही कार्य हैं ॥ ४ ॥

एतन्नानाविधं विश्वमात्मसृष्टमधोक्षज ।
आत्मनानुप्रविश्यात्मन् प्राणो जीवो बिभर्ष्यजः ॥ ५ ॥

हे अधोक्षज ! हे परमात्मन् ! हे जन्मरहित ! आप ही प्राण (क्रियाशक्ति) एवं जीव (ज्ञानशक्ति) रूपसे अपनी माया-रचित इस विचित्र जगतमें अन्तर्यामी रूपसे प्रवेश करके इसका पोषण कर रहे हैं ॥ ५ ॥

प्राणादीनां विश्वसृजां शक्तयो याः परस्य ताः ।
पारतन्त्र्याद् वैसादृश्याद् द्वयोश्चेष्टैव चेष्टताम् ॥ ६ ॥

बाणमें जो भेद करनेकी शक्ति देखी जाती है, वह जिसप्रकार बाण मारने वाले पुरुषकी ही होती है, उसी प्रकार विश्व-कारण प्राणादि पदार्थोंमें भी शक्ति पराधीन होनेके कारण परमकारण परमेश्वरकी ही होती है। चेतन और अचेतन (जड़) पदार्थोंमें परस्पर विषमता (भेद) होनेके कारण अचेतन पदार्थ चेतनकी तरह स्वतन्त्र न होकर उसके अधीन ही होता है। वायुकी शक्तिद्वारा जिस प्रकार तृण आदिकी गमन-क्रिया एवं पुरुषकी शक्तिद्वारा जिस प्रकार बाणकी गति देखी जाती है, उसी प्रकार परमेश्वरकी शक्तिद्वारा ही प्राणादि पदार्थोंकी केवलमात्र चेष्टा देखी जाती है। परन्तु इनकी कोई स्वतन्त्र शक्ति नहीं है ॥ ६ ॥

कान्तिस्तेजः प्रभा सत्ता चन्द्राग्न्यर्कक्षविद्युताम् ।
यात्स्थैर्यं भूभृतां भूमेर्वृत्तिर्गन्धोऽर्थतो भवान् ॥ ७ ॥

चन्द्रमाकी कान्ति, अग्निका तेज, सूर्यकी ज्योति, बिजली एवं तारोंकी स्फुरणरूप सत्ता, पर्वतोंकी स्थिरता, एवं भूमिकी आधार शक्ति और गन्धगुण—ये सब वस्तुतः आपके ही स्वरूप हैं ॥ ७ ॥

तर्पणं प्राणनमपां देव त्वं ताश्च तद्रसः ।
ओजः सहो बलं चेष्टा गतिर्वायोस्तवेश्वर ॥ ८ ॥

हे देव ! ईश्वर ! आप ही जल एवं उसकी तृप्तिकारिणी शक्ति, जीवनशक्ति और रस स्वरूप हैं एवं वायुके ओज, सह, बल, चेष्टा और गति—ये सभी ही आपकी ही शक्तिके स्वरूप हैं ॥ ८ ॥

दिशां त्वमवकाशोऽसि दिशः खं स्फोट आश्रयः ।
नादो वर्णस्त्वमोङ्कार आकृतीनां पृथक्कृतिः ॥ ९ ॥

दिशाओंका रिक्त (खाली) स्थान, दिशाएँ, आकाश, उनके आश्रित शब्द एवं तन्मात्राएँ, नाद, ओंकार, वर्ण एवं पदार्थोंके पृथक्-पृथक् नामनिर्देश करनेवाले पदसमूह अर्थात् वर्ण-पदादि रूपा वैखरी (वाणीका व्यक्तरूप)—ये समस्त भी आप ही हैं ॥ ९ ॥

इन्द्रियं त्विन्द्रियाणां त्वं देवाश्च तदनुग्रहः ।
अवबोधो भवान् बुद्धेर्जीवस्यानुस्मृतिः सती ॥ १० ॥

इन्द्रियोंकी विषय-प्रकाशिका शक्ति, उनके अधिष्ठातृ देवता, उनकी अधिष्ठान-शक्ति, बुद्धिकी निरन्तर उद्योग-शक्ति एवं जीवकी यथार्थ प्रतिसन्धान-शक्ति—ये सभी आपके ही स्वरूप हैं ॥ १० ॥

भूतानामसि भूतादिरिन्द्रियाणाञ्च तैजसः ।
वैकारिको विकल्पानां प्रधानमनुशायिनाम् ॥ ११ ॥

पंच महाभूतोंका कारणस्वरूप तामस अहंकार, इन्द्रियोंका कारणस्वरूप राजस अहंकार, वैकल्पिक देवताओंका कारण स्वरूप सात्त्विक अहंकार एवं जीवोंकी संसारकारणी-भूता प्रकृति—ये समस्त भी आप ही हैं ॥ ११ ॥

नश्वरेष्विह भावेषु तदसि त्वमनश्वरम् ।
यथा द्रव्यविकारेषु द्रव्यमात्रं निरूपितम् ॥ १२ ॥

मिट्टी, स्वर्ण आदि वस्तुओंके विकारसे उत्पन्न घड़ा, कुण्डल आदि विनश्वर पदार्थों में जिसप्रकार मिट्टी, सोना, आदि वस्तुएँ ही मूल रूपसे होती हैं, उसी प्रकार जगतके नाशवान पदार्थोंमें एकमात्र आप ही अविनश्वर रूपसे वर्त्तमान हैं ॥ १२ ॥

सत्त्वं रजस्तम इति गुणास्तद्वृत्तयश्च याः ।
त्वय्यद्धा ब्रह्मणि परे कल्पिता योगमायया ॥ १३ ॥

सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण एवं उनकी वृत्तियाँ साक्षात् परब्रह्म स्वरूप आपको योगमायाके द्वारा उत्पन्न हुई हैं ॥ १३ ॥

तस्मान्न सन्त्यमी भावा यर्हि त्वयि विकल्पिताः ।
त्वञ्चामीषु विकारेषु ह्यन्यदाव्यावहारिकः ॥ १४ ॥

हे देव ! पूर्वोक्त भाव समूह कल्पित होनेके कारण केवलमात्र जब वे कल्पित होते हैं, तभी आपमें उनकी प्रतीति होती है एवं आप भी उस समय ही कारण रूपसे इन सब विकार पदार्थों में प्रविष्ट रहते हैं । अन्य समय उनकी कोई सत्ता नहीं रहती, केवल वैसे विकल्प करनेवाले परमार्थ स्वरूप आप ही अवशिष्ट रहते हैं ॥ १४ ॥

गुणप्रवाह एतस्मिन्नबुधास्त्वखिलात्मनः ।
गतिं सूक्ष्मामबोधेन संसरन्तीह कर्मभिः ॥ १५ ॥

इस गुणप्रवाहमें सर्वान्तर्यामी आपको सूक्ष्मगतिके सम्बन्धमें जो व्यक्ति नहीं जानते, ऐसे व्यक्ति ही देहाभिमानसे उत्पन्न हुए कर्मोंके बन्धनमें फँसकर संसार दशाको प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥

यदृच्छया नृतां प्राप्य सुकल्पामिह दुर्लभाम् ।
स्वार्थे प्रमत्तस्य वयो गतं त्वन्मायया ईश्वर ॥ १६ ॥

हे ईश्वर ! इस लोकमें किसी प्रकारसे भाग्यके कारण कार्यकुशल इन्द्रिय-शक्ति-युक्त यह दुर्लभ मनुष्य शरीर प्राप्त करके भी आपकी मायाके प्रभावसे उत्पन्न मतिभ्रमके कारण स्वार्थ-विषयोंमें ही हमारी आयु व्यर्थ बीत गई है ॥ १६ ॥

अस्तावहं ममैवैते देहे चास्यान्ववायिषु ।
स्नेहपाशैर्निबध्नाति भवान् सर्वमिदं जगत् ॥ १७ ॥

हे भगवन् ! आप ही इन जीवोंको देहमें अहं-बुद्धिरूप एवं पुत्रादि विषयोंमें ममत्व-बुद्धिरूप स्नेहकी रस्सीद्वारा आबद्ध किया करते हैं ॥ १७ ॥

युवां न नः सुतौ साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरौ ।
भूभारक्षत्रक्षपण अवतीर्णौ तथात्थ ह ॥ १८ ॥

आप दोनों वस्तुतः हमारे पुत्र नहीं हैं, परन्तु पृथ्वीके भारस्वरूप क्षत्रियोंके विनाश के लिए आप दोनों प्रकृति और पुरुषके ईश्वर होने पर भी मनुष्य रूपमें अवतीर्ण हुए हैं, यह बात आप लोगोंने जन्मके समय बतलाया था ॥ १८ ॥

तत् ते गतोऽस्म्यरणमद्य पदारविन्द-
मापन्नसंसृतिभयापहमार्तबन्धो ।
एतावतालमलमिन्द्रियलालसेन
मर्त्यात्मदृक् त्वयि परे यदपत्यबुद्धिः ॥ १९ ॥

हे दीनबन्धो ! इसी कारणसे मैंने आज शरणागत व्यक्तियोंके संसार-भय नाश करने वाले आपके पदकमलोंका आश्रय लिया है । इस मर्त्य शरीरमें आत्मबुद्धियुक्त मैं जिस इन्द्रिय-तृष्णाके वशीभूत होकर आपको अपना पुत्र समझ रहा हूँ, मेरी ऐसी इन्द्रिय-तृष्णा अब दूर हो जाय ॥ १९ ॥

सूतीगृहे ननु जगाद भवानजो नौ
संजज्ञ इत्यनुयुगं निजधर्मगुप्त्यै ।

नानातनूर्गगनवद् विदधज्जहासि
को वेद भूम्न उरुगाय विभूतिमायाम् ॥ २० ॥

हे महाकीर्त्तिशाली ! आप वस्तुतः जन्मरहित होने पर भी अपनेद्वारा प्रतिष्ठित धर्म-मर्यादाकी रक्षाके लिए प्रत्येक युगमें जन्म-अभिनय रूपी लीला करते रहते हैं, यह बात आपने सूतिकागृहमें मुझसे और देवकीसे कही थी। हे भगवन् ! आप घटपटादिमें स्थित महाकाशकी तरह प्रत्येक युगमें विविध रूपसे प्रकट होकर पुनः उनको अप्रकट करते रहते हैं। हे भूमन् ! सब सुखोंके आधार स्वरूप ! आपकी विभूतिरूप मायाको कोई भी जाननेमें समर्थ नहीं है ॥ २० ॥

॥ इति श्रीवासुदेवस्य श्रीरामकृष्णस्तोत्रं समाप्तम् ॥
॥ इति श्रीवासुदेवका श्रीरामकृष्णस्तोत्र समाप्त ॥

बिलँब छाँड़ि हरि भजि लीजै

औसर हारचौ रे, ते हारचौ।
मानुष-जनम पाइ नर बौरे, हरिकौ भजन बिसारचौ ॥
रुधिर बूँदतैं साजि कियौ तन, सुंदर रूप सँवारचौ ।
जठर अगिनि अंतर उर दाहत, जिहिं दस मास उबारचौ ॥
जबतैं जनम लियौ जग भीतर, तबतैं तिहिं प्रतिपारचौ ।
अंध, अचेत, मूढ़मति, बौरे, सो प्रभु क्यौं न सँभारचौ ? ॥
पहिरि पटंबर, करि आडंबर, यह तन झूठ सिंगारचौ ।
काम-क्रोध-मद-लोभ, तिया-रति, बहु बिधि काज बिगारचौ ॥
मरन भूलि जीवन थिर जान्यौ, बहु उद्यम जिय धारचौ ।
सुत-दाराकौ मोह अँधै बिष, हरि-अमृत फल डारचौ ॥
झूठ-साँच करि माया जोरी, रचि-पचि भवन सँवारचौ ।
काल-अवधि पूरन भइ जा दिन, तनहू त्यागि सिधारचौ ।
प्रेत प्रेत तेरी नाम परचौ, अब जेंवरि बाँधि निकारचौ ।
जिहि सुतकैं हित बिमुख गोबिंदतैं, प्रथम तिहिं मुख जारचौ ॥
भाई-बंधु, कुटुम्ब-सहोदर, सब मिलि यहै बिचारचौ ।
जैसे कर्म, लहौ फल तैसे, तिनुका तोरि उचारचौ ॥
सतगुरुकौ उपदेस हृदय धरि, जिन भ्रम सकल निवारचौ ।
हरि भजि, बिलँब छाँडि सूरज सठ, ऊँचैं टेरि पुकारचौ ॥

श्रीबलदेव प्रभुका तत्व

मैं उस देवताको नमस्कार करता हूँ जो एक ही साथ सर्वशक्तिमान एवं निःशक्तिमान हैं। किन्तु इन दोनों विषयमें वे अचिन्त्य अर्थात् मानव चिन्ताके अतीत हैं। जो देवता एवं असुर—इन दोनोंके वन्दनीय हैं, जिन्हें ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र, मरुतादि देवता दिव्य स्तुतियोंद्वारा स्तव करते हैं, उपनिषद्के साथ वेद-समूह एवं सामगान करनेवाले ब्राह्मण लोग जिनकी कीर्त्तन-गाथाका गान करते हैं, योगी पुरुष जिनके दर्शनकांक्षी हैं, सुर-असुर-मनुष्य आदि कोई जिनका आदि-अन्त नहीं जानते, तथापि उन्हें जाननेके लिये उत्सुक हैं, वे ही वस्तु बलदेव हैं। उनको मैं नमस्कार करता हूँ।

श्रीबलदेव स्वयं-प्रकाश-तत्व हैं। परमेश्वर वस्तु प्रकाशित न होनेसे कोई भी उन्हें जान नहीं सकता। कृष्णचन्द्र अखिलरसामृतसिन्धु हैं। उन्हीं कृष्णचन्द्रके स्वयंप्रकाश-विग्रह अभिन्न-वस्तु श्रीबलदेव हैं। वे भी 'श्रीव्रज-राजकुमार' के रूपमें प्रसिद्ध हैं। भगवान श्रीकृष्णमें जो सभी बातें हैं, वे उनमें भी हैं। तब उन्हें 'कृष्ण' नहीं कहा जाता, उन्हें 'बलराम' कहा जाता है। समस्त विष्णु-तत्त्व जिनसे प्रकाशित हुए हैं, देवासुरगण जिनकी उपासना करते हैं, वे ही स्वयं-प्रकाश वस्तु हैं। सुरासुर लोग स्वयं रूप वस्तुकी उपासना न कर स्वयं-प्रकाश वस्तुकी उपासना करते हैं; क्योंकि स्वयं-रूप वस्तु स्वयंरूप-प्रकाशके द्वारको छोड़कर स्वयं अपना परिचय नहीं देते। वे ही स्वयं-प्रकाश-विग्रह श्रीबलदेव प्रभु हैं। महावैकुण्ठमें वासुदेव-संकर्षण-प्रद्युम्न-अनिरुद्ध—इस चतुर्व्यूहरूपसे वे ही प्रकाशित हैं। वहाँ स्वयं-प्रकाश-विग्रहका रूप पूर्ण है। 'रूप' शब्दका अर्थ—पूर्ण है, भग्नांश नहीं। ये रूपविशिष्ट वस्तु ही संकर्षणदेव या स्वयं रूपके वैभव हैं, जिनके चार प्रकाश-विग्रह महावैकुण्ठमें प्रकाशित हैं। एक ही वस्तु चार प्रकारसे प्रकाशित होनेपर भी वे चारों वस्तु एक ही हैं। वासुदेव प्राभव विलास हैं, संकर्षण वैभव-विलास हैं, प्रद्युम्न प्राभव-प्रकाश हैं एवं अनिरुद्ध वैभव-प्रकाश हैं।

वैकुण्ठ एवं ब्रह्माण्डके बीचमें कारणसमुद्र है। तद्रूपवैभवके कारण संकर्षण-प्रभुके अंश कारणोदकशायी महाविष्णु हैं। वे वैकुण्ठ एवं ब्रह्माण्डके कारण—सभी हैं। वैकुण्ठ अविनश्वर है एवं ब्रह्माण्ड नश्वर है। वैकुण्ठ, गोलोक आदि भगवानकी अन्तरंगा शक्ति प्रकटित वस्तु होनेके कारण सम्पूर्ण उपादेय, अपरिच्छिन्न, असीम आदि शब्द एक ही साथ उनकी सार्थकता सम्पादन कर रहे हैं। वैकुण्ठ अविनश्वर आधार है। वह सृष्टि किया हुआ पदार्थ नहीं, नित्य-प्रकाशमान है। ब्रह्माण्ड नश्वर एवं कालद्वारा परिवर्तनशील आधार है। वह भगवानकी बहिरंगा शक्तिद्वारा निर्मित है।

ब्रह्माका अण्ड ब्रह्माण्ड अर्थात् सृष्ट-पदार्थ है। वैकुण्ठ और ब्रह्माण्डके रचयिता महाविष्णु

संकर्षणव्यूहसे प्रकट होकर कारणसमुद्रमें कारणार्णवशायी रूपसे विराजमान हैं। इन कारणार्णवशायी महाविष्णुसे द्वितीय पुरुषावतार गर्भोदकशायी प्रकट हुए हैं, जिन्हें ऋक्समूह 'सहस्रशीर्ष पुरुषः' आदि कहकर स्तुति करते है, योगी लोग जिन्हें परमात्माके रूपसे देखते हैं, जो भूमा एवं सर्वव्यापी हैं, जिन्हें खण्डित नहीं किया जा सकता, जिनके नाभिनालमें जन्म एवं मरणके मूल या ब्रह्माण्डकी रचना एवं प्रलय करनेवाले हिरण्यगर्भ ब्रह्मा एवं रुद्रदेव हैं। इन द्वितीय पुरुषावतारको स्वयंरूप भगवानका अंश-कला कहा गया है। ये हमारे बलदेव प्रभुके अंशांश—'परमात्मा' शब्द द्वारा प्रसिद्ध हैं। व्यापकता धर्म आश्रय कर इनकी उपासना वर्त्तमान है। क्षीरोदकशायी विष्णु ब्रह्म-वाचक शब्द हैं, जीव-वाचक शब्द नहीं हैं। ब्रह्म बृहत् एवं पालनकारी हैं।

मानव ज्ञान द्वारा जो कुछ जाना जाय, वह संकीर्ण है, बलदेव प्रभुके बलका थोड़ा-सा आभासमय अंश मात्र है। बलदेव प्रभु सर्व शक्तिमान् हैं। सभी बल उनके पदनखमें अवस्थित हैं, जिस सर्व शक्तिमत्तासे दूर रहकर श्रीकृष्णचन्द्रने स्वयंरूपकी लीला प्रकाश की है। मर्यादा-पथमें भगवान्‌को जाननेकी इच्छा होनेपर हम बलदेव प्रभुके पादपद्म तक पहुँच सकते हैं, उनके बिना हम दर्शन नहीं कर सकते। यहाँ जो अत्यन्त दुर्लभ है एवं जो आंशिक है, चिज्जगत्‌में उसका मूल (आकर) वस्तु सम्पूर्ण रूपसे अवस्थित है। बलदेव प्रभुके बलसे इस बातकी आलोचना करनेमें हम समर्थ होते हैं। हम मायिक जगत्‌के अन्तराल (ओट) में अवस्थित है, हमारी बात खण्डित हो जाती है। जो बल हमें अपने अधीन कर लेता है, हम उसका आनुगत्य स्वीकार करते हैं। हम दुर्बल हैं, थोड़ा-सा बल प्राप्त करनेके लिये कितनी चेष्टा करते हैं! स्वयं भगवान् श्रीगौरांगदेवने कहा है—"तृणसे भी सुनीच बनो, वृक्षकी तरह सहन-शीलता प्राप्त करो, अपनी चेष्टासे बलवान होनेकी दुर्बुद्धि न कर जो बल-प्रदाता हैं, उन बलदेव प्रभुका आश्रय ग्रहण करो।" जिनका बल है, वे ही बलदेव प्रभु हैं। कृष्णचन्द्र बलदेवजीके अनुगत व्यक्तिकी सेवा चाहते हैं। बलदेव प्रभुके अनुग्रहके बिना कृष्णसेवा पानेका उपाय नहीं है। जो व्यक्ति बलदेव प्रभुके सेवक हो सकते हैं, वे यथार्थ बलवान होते हैं। हम यदि दूसरे कार्यमें नियुक्त हो जायँ, तो बलदेव प्रभुकी सेवा करनेके बदले अपनी सेवाके प्रार्थी हो पड़ते हैं।

हम दुर्बल जीव हैं—५० गुण अत्यन्त थोड़ी मात्रामें हममें वर्त्तमान हैं। ६० गुण पूर्णरूपसे जिनमें वर्त्तमान हैं, ऐसे भगवान् विष्णुके आनुगत्यको छोड़कर हम केवल थोड़ेसे गुणोंसे ही युक्त रहेंगे। किन्तु उनका अनुग्रह मिलने पर हम पूर्णता प्राप्त करेंगे। पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि जिस किसी अवस्थामें हमें क्यों न जाना पड़े, उनके आनुगत्यको छोड़कर हम बलरहित होकर रहेंगे। जो सर्व शक्तिमान हैं, जिनसे मानव पूर्ण विचार-शक्ति पाकर कृष्ण-दर्शन करनेका अवसर पाते हैं, जो सुरासुर आदि सभीके वन्दनीय हैं, सभी वेद जिनके विषयमें निश्चय नहीं कर पाते, वे ही बलदेव हैं। उनके ही बाह्य अंगसे यह जगत प्रकाशित हुआ है। बाहरी अंग परिवर्त्तन होता रहता है। अन्तर या भीतरी अंग नित्य है। उनमें

सन्धिनी (सत्) वर्त्तमान है। वे ही बलदेव प्रभु एकमात्र पालनकारी हैं, सभी मंगलोंके प्रदान करनेवाले हैं। उनके मूलवस्तु या मूल अंशी कृष्ण स्वयंरूप हैं, जो स्वयंप्रकाश श्रीबलदेव प्रभुके सेव्य हैं। वे सखा, भाई, शय्या, व्यजन (पंखा), आवाहन, गृह, छत्र, चामर, वस्त्र, भूषण, आसन आदि रूपसे श्रीकृष्णकी सेवा करते हैं। बलदेव, बलभद्र, बलराम आदि शब्दोंद्वारा उनके सभी प्रकार के बलकी बात कही गई है। उनकी अन्तरंगा शक्ति या चिच्छक्तिसे वैकुण्ठ, गोलोक, वृन्दावनादि प्रकट हुए हैं। उनकी बहिरंगा या माया शक्तिसे इस जड़ ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति हुई है। उनकी तटस्था या जीव शक्तिसे अनन्त जीव प्रकट हुए हैं।

जिन प्रभुका थोड़ा-सा बल प्राप्त कर सभी जीव उनके आनुगत्यमें पारमार्थिक बल पाकर बलवान होते हैं, कृष्णसेवा प्राप्त करते हैं, वे ही बलदेव प्रभु सन्धिनी-शक्तिमद् विग्रह हैं। कृष्णचन्द्र सम्विद्-विग्रह हैं। कृष्णचन्द्र ज्ञाता और ज्ञेय हैं। उनमें सन्धिनी शक्ति है। ज्ञाता और ज्ञेयके विचारको भली प्रकारसे प्रकट करनेके लिये बीचमें जो वर्त्तमान है, वही सत् है। सच्चिदानन्द-वस्तु श्रीबलदेव प्रभु, सच्चिदानन्द-वस्तु श्रीकृष्णचन्द्र, सच्चिदानन्द वस्तु वार्षभानवी श्रीमती राधिका—ये सभी ही सच्चिदानन्दमय वस्तु हैं। सर्व-शक्तिमान् श्रीबलदेव प्रभुमें सभी परस्पर विरुद्ध प्रतीत होनेवाले धर्मोंका सुन्दर रूपसे समावेश है। चिद्वस्तु जीवरूपी हम जब सच्चिदानन्दमय वस्तुके ज्ञान प्राप्त करनेके लिये व्यस्त रहते हैं, तब हमें बाहरी जगतकी अन्यान्य बातोंके साथ अपना सामञ्जस्य करना उचित नहीं है। हम यदि ऐसा करेंगे, तो हमारा अमंगल ही होगा।

तटस्था शक्तिसे उत्पन्न हम जीव कृष्ण-विमुखताके कारण इस जड़ जगतमें वास कर रहे हैं। बलके अभावके कारण हम यहाँ प्रत्येक दूसरेके द्वारा आक्रान्त हैं। जड़-संबंध हमें नाना प्रकारसे विचलित कर रहा है। श्रीबलदेव प्रभुके आनुगत्यको छोड़कर हमारे लिये और कोई गति नहीं है। हमारे पूर्वगुरु श्रीव्यासदेवने श्रीमद्भागवतके प्रारम्भमें "धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र" श्लोकमें जिस वास्तव सत्यकी बात बतलायी है, उसका परित्याग कर हम यदि भगवानकी त्रिगुणमयी मायाके अधीन हो जाँय, तो श्रीबलदेव प्रभुके पदनखों की शोभा दर्शन करनेका सौभाग्य हमें न मिलेगा। श्रीबलदेव प्रभु चेतनमय बलके दाता हैं। अचिद्से (मायासे) हम जो बल या ज्ञान प्राप्त करते हैं, उसे वे ध्वंस कर सकते हैं। उनके निकट हम यथार्थ सत्यका सन्धान पा सकते हैं। तलवकार उपनिषद्में उमा-हैमवती संवादमें इन्द्र, वरुण, अग्नि, पवन आदि देवताओंकी बोध-शक्ति, विचार-शक्ति, बल आदिकी निरर्थकता भगवानने दिखलायी है। ये सभी ही अचिद् बलमात्र हैं। श्रीबलदेव प्रभुके बलसे बलवान न होने पर ये सभी बल व्यर्थ हो जाते हैं। इन्द्रादि देवताओंका समस्त बल श्रीबलदेव प्रभुका बल प्राप्त नहीं करनेके कारण व्यर्थ हो गया था।

हमारा वर्त्तमान बल प्रतिक्षण ही नष्ट होता जा रहा है। वास्तव सत्यका अनुसंधान पानेके लिए श्रीबलदेवजीका आश्रय लेनेकी

अत्यन्त आवश्यकता है। हम गौण सांसारिक विषयोंमें ज्ञान प्राप्त करनेके लिए दूसरोंके निकट जो सभी परामर्श ग्रहण करते हैं, उनका मूल्य एक कौड़ीमात्र है। जो परिवर्त्तन होनेवाला है, नश्वर है, ऐसी वस्तुके प्रति या ज्ञानके प्रति बुद्धिमान व्यक्ति विश्वास नहीं रखते। हम मनोधर्मके द्वारा प्रेरित होकर जो श्रेष्ठताका विचार करते हैं,अणिमा, महिमा आदि आठों सिद्धिकी प्रार्थना करते हैं वह प्राकृत या जड़ बुद्धिका परिचयमात्र है। फूटे घड़ेमें पानी रखनेसे क्या लाभ होगा ?

जब हम बलदेव प्रभुके आनुगत्यमें कार्य करते हैं, तब ही कृष्णसेवा होती है। बलदेव प्रभुका एकमात्र कृत्य कृष्णसेवा है। सेव्य वस्तु भगवान् एवं सेवक जीवोंमें परस्पर पाँच प्रकारका सम्बन्ध है। ज्ञाता और ज्ञेय रूपसे क्रमशः कान्त-कान्त, पुत्र-पितामाता, बन्धु-बन्धु, सेव्य-सेवक एवं निरपेक्ष शान्त। सेवक जब सेव्यकी ओर अग्रसर होते हैं, तब उन्हें बलदेव प्रभु ही सहायता करते हैं। बलदेव प्रभुका बल प्राप्त नहीं करनेपर आध्यक्षिकता या भौतिक विचारधारा प्रबल होकर नाना प्रकारके मतोंकी उत्पत्ति होती है। अतएव श्रीमद्भगवद्गीता (३।२७) में भी कहा गया है—

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकार-विमूढ़ात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते॥

अर्थात् अविद्या या अज्ञानसे जीव जड़ मायामें आबद्ध होकर जड़ीय अहंकारद्वारा मोहितहोकर प्रकृतिके गुण एवं ईश्वरकी अधीनता द्वारा किये जा रहे सभी कार्योंको 'मैं ही करता हूँ' इस ज्ञानसे अपनेको ही करनेवाला समझता है।

ऐसी अवस्थामें हमारी विचारधारा दुष्ट हो जाती है एवं अहंग्रहोपासना (अपनेको ब्रह्म या भगवान्‌से एकस्वरूप समझना) के द्वारा 'हम ही वह वस्तु हैं', ऐसा सोचते हैं। स्वयं अमानी-मानद होना ही हमारे लिए उत्तम लाभ है, उसीसे हमें नाम-भजनकी योग्यता प्राप्त होती है। अन्यथा हम ऐसी योग्यता कदापि पा नहीं सकते।

नामके बदलेमें जड़ शब्दोंका उच्चारण कर हम जो अमंगल ग्रहण करते हैं, उससे परित्राण पानेके लिए श्रीगौरांग महाप्रभुने हमें उपाय बतलाया है। श्रीगौरांगदेव गया-धामसे लौटकर नवद्वीपमें आनेपर उन्होंने पुरुषोत्तम सञ्जयके घरसे छात्रोंको ब्राह्मी (भगवत्पर) भाषामें जो व्याकरण-शिक्षा दी थी, उसमें उन्होंने सभी शब्दोंका ही कृष्णरूपसे वर्णन किया है। स्फोट (नित्य शब्द) की दो वृत्तियाँ हैं—(१) विद्वद्रूढ़ि या चिद्वृत्ति (२) अविद्वद्रूढ़ि या अचिद्वृत्ति। चिद्वृत्ति या विद्वद्रूढ़िमें सभी शब्द एकमात्र कृष्णापादपद्मको ही लक्ष्य करते हैं। अचिद्वृत्ति या अविद्वद्रूढ़िमें भगवान्‌को छोड़कर दूसरी वस्तुओंको लक्ष्य किया गया है। कृष्णके सम्बन्धमें ज्ञानके अभाव होनेपर नाना प्रकार की काल्पनिक विचारधारा उदित होनेके कारण कृष्ण-विमुखताकी उत्पत्ति हुई है। हम श्रीबलदेव प्रभुकी कृपासे पुनः केवल-शुद्धज्ञान पा सकते हैं—"कैवल्यैकप्रयोजनं" या कैवल्यरूप प्रेम ही प्रयोजन है—इस विचारमें प्रतिष्ठित हो सकते हैं। उस समय श्रीमद्भागवत ही वेदान्त-सार है—यह जाना जायगा। उन्हीं

बलदेव प्रभुके लिए सर्वप्रकारसे अद्वयज्ञान (समस्त ज्ञानके एकमात्र विषय) श्रीकृष्ण पादपद्मकी सेवाको छोड़कर और कोई कर्तव्य नहीं है। इन बलदाता प्रभुका आनुगत्य स्वीकार करना अथवा उनके निकटसे चिद्बल या अप्राकृत बल प्राप्त करना ही हमारा एकमात्र कर्तव्य है। क्योंकि बलहीन व्यक्ति भगवानको पा नहीं सकते ('नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः") उन्हीं बलदेव प्रभुके बलको छोड़कर हमारे लिए और कोई धन नहीं है।

हमने अचिद् या जड़ीय बलको पानेके लिए बहुत चेष्टा की, किन्तु वह सभी बल नष्ट हो जाता है। क्यों नष्ट हो जाता है, उसका संधान पाना आवश्यक है। बलदेव प्रभु हमें विरुद्ध या मायाशक्तिसे उद्धार करते हैं, जिस प्रकार भक्त प्रहलादको नृसिंह रूपसे किया था। मनोधर्मकी पिपासाको वे अपने मूषलसे उखाड़ फेंकते हैं। उनके थोड़ेसे अनुग्रहसे सभी प्रकारके मंगल प्राप्त हो जाते हैं। उनका आविर्भाव भी कैसा है ? निःशक्तिक रहनेकी योग्यता उनमें है, किन्तु काल्पनिक निःशक्तिक नहीं। अर्थात् सर्वशक्तिमत्ताके विचारको दूर रखकर भगवान् कृष्णचन्द्र जिस प्रकार लीला करते हैं, बलदेवप्रभु भी उसी प्रकारसे लीला कर सकते हैं। जब वे वस्तु ज्ञेय रूपसे प्रकाशित हों, तब हम क्रम जान सकते हैं—श्रीवासुदेव या रुक्मिणी-द्वारकेश, श्रीसीता-राम एवं श्रीलक्ष्मी-नारायण। जन्म-स्थिति स्वीकार श्रीरामचन्द्रकी सेवाद्वारा जाना जा सकता है। रुक्मिणीशकी सेवा-प्राप्तिमें द्वारका, मथुरा और गोकुल—सर्वत्र ही श्रीबलदेवजी सहायता प्रदान करते हैं, उनकी कृपासे मानवों के भाव-समूहको ईश्वरपर आरोप करने रूपी महान् अनर्थसे रक्षा प्राप्त करते हैं। यह कार्य निन्दायोग्य है। प्राकृत सहजिया लोग इसे धर्म समझते हैं। वहाँके (चिज्जगत्के) विकृत प्रतिफलनसे यहाँकी सभी वस्तुएँ उत्पन्न हुई हैं। जिनकी बहिरंगा मायाशक्तिसे उत्पन्न होकर ये वस्तुएँ सत्यके विकृत प्रतिफलनको सत्य जैसे अनुभवकराती हैं,उन्हीं मूल आकर-वस्तुरूप बलदेवप्रभुके सम्बन्धमें चर्चा करें। नहीं तो बौद्ध विचार, अर्हत् (जैन) विचार आदि अवलम्बन कर अष्टवसुओं प्रधान उपरिचर वसुके विचारको नहीं ग्रहण करनेसे हमारा विचार अक्षज या जड़ीय विचार हो जायगा। किन्तु श्रीबलदेव प्रभु अधोक्षज (प्राकृत इन्द्रियातीत या अप्राकृत) वस्तु हैं। वे अंतर्यामी रूपसे कुविचारका ध्वंस करते हैं। कृष्णकी कथाको आलोचना करनेपर सभी सुविधाएँ प्राप्त होंगी। तब कृष्णके प्रकाश-विग्रह श्रीबलदेवजीके बारेमें अनुभव प्राप्त होगा। उस समय क्रम-उपलब्धि होकर उन्नत हो सकेंगे तथा रावणकी तरह सीढ़ी बाँधनेके विचारको छोड़ देंगे; जगतके ज्ञानसे inductive process (अनुमान करनेकी पद्धति) रूप कल्पनाके पथका अवलम्बन न करेंगे। सूर्यका प्रकाश आँखोंपर पड़नेपर उसकेद्वारा हम सूर्यको देखेंगे। आलोकमें सूर्यकी कल्पना करना मूर्खता है या अतिरञ्जिता करना है। भगवान्ने ब्रह्माजीसे कहा था—

यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः।
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात् ॥

अर्थात् मेरा स्वरूप, मेरा रूप, गुण एवं लीला जिस प्रकार है, उन सभीका तत्त्वज्ञान मेरे अनुग्रहसे तुम प्राप्त करो।

भगवत्कृपाद्वारा वे भगवद्वस्तु प्रकाशित होते हैं। अक्षज ज्ञान या जड़ीय ज्ञानसे उनको जाना नहीं जा सकता। श्रीबलदेव प्रभुको छोड़कर और कोई भगवान् कृष्णको नहीं बतला सकता। हम अपनी चेष्टा द्वारा परम वस्तु भगवान्के बारेमें ज्ञान प्राप्त करनेमें असमर्थ हैं।

एकमात्र भक्तिबलसे ही सर्वसिद्धि हो सकती है। अतएव श्रीमद्गीता (१८।५५) में भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा है—

भक्त्या मामभिजानाति
यावान् यश्चास्मि तत्वतः।
ततो मां तत्वतो
ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥

अर्थात् मेरा जैसा स्वरूप है एवं जैसा स्वभाव है, निर्गुण भक्ति उदित होनेपर ही जीव उसे विशेष रूपसे जान सकते हैं। मेरे सम्बन्धमें वस्तुज्ञान होनेपर जीव मुझमें प्रवेश करते हैं या मेरा सान्निध्य (निकटता) प्राप्त करते हैं।

परा या प्रेमा भक्तिको छोड़कर हमारे लिए कोई उपाय नहीं है। श्रीबलदेव प्रभुके अनुग्रहके बिना मंगलका पथ नहीं मिलता। भक्तिको छोड़कर और सभी विचार प्राकृत या मानव-ज्ञानद्वारा कल्पित हैं।

निर्विशेषवादी लोग सोचते हैं कि भौतिक या स्थूल ज्ञान द्वारा वर्तमान जड़ीय हेयता या तुच्छताका अतिक्रम कर चेतनमय राज्यमें जाया सकता है। ऐसे विचारकी निरर्थकता श्रीबलदेव प्रभुकी कृपासे समझी जा सकती है। श्रीबलदेव प्रभुका अनुग्रह प्राप्त होने पर चिद्बल और अचिद्बलमें जो भेद है, वह समझा जा सकता है। बद्ध जीवोंके हृदय-आकाशमें या चिदाभासमें—जड़ीय मनमें वस्तु का कोई क्रिया-कलाप नहीं है। जड़का रूप या जड़की चिन्ता वहाँ नहीं ले जानी होगी।

वे वस्तु श्रीचैतन्यदेवको छोड़कर और कोई पृथक् वस्तु नहीं हैं। आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, ज्ञानी—ये चार प्रकारके व्यक्ति अपनी-अपनी वृत्ति परित्याग करनेपर शुद्ध भक्त हो सकते हैं। दुर्बलताके अधीन होकर अपने आपकी वंचना करना हमारा कर्तव्य नहीं है। वास्तव सत्य भगवानका अनुग्रह ही हमारे लिए ढूँढ़ने योग्य है। चिद्बलसे बलवान होना आवश्यक है। दांभिकता, अहंकार, अचिद्बलसे बलवान होनेसे आत्ममंगल नहीं होता। स्वयं भगवान् श्रीगौरसुन्दरने हमारी ऐसी चिन्ताधाराकी व्यर्थता दिखलानेके लिए कहा है—

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः॥

अर्थात् तृणसे भी अधिक विनम्र होकर, पेड़से भी अधिक सहिष्णु होकर, दूसरोंको मान देते हुए एवं स्वयं अमानी रहकर सर्वदा हरिकीर्त्तन करना चाहिए।

सब समय भगवान्का ही कीर्त्तन करना होगा। माया का कीर्त्तन नहीं करना होगा। वैकुण्ठराज्यमें वास करना होगा। सर्वदा माया द्वारा विमोहित होनेपर भी मायातीत राज्यमें विचरण करनेका बल श्रीबलदेव प्रभु की कृपासे प्राप्त करना होगा। जिन्हें चिद्बल

एवं चिद्विलासकी प्राप्ति हुई है, वे ही वास्तव सत्यके प्रचारके लिए प्रयत्न करते हैं। यहाँके अनन्तकोटि धन, ज्ञान, विद्या, सौन्दर्य आदि प्राप्त करनेकी आवश्यकता नहीं है। जो व्यक्ति इन वस्तुओंका बहुत आदर करते हैं, उन्हें हम दूरसे ही प्रणाम करते हैं या उन्हें दूर रहने के लिए प्रार्थना करते हैं, क्योंकि अपने मंगल पाने की इच्छा उनमें थोड़ी भी नहीं है। जो लोग अमंगल चाहनेवाले हैं, असत्य पर निर्भर है, उनकी विचार-प्रणाली प्रशंसनीय नहीं है।

हमने मनुष्य जन्म प्राप्त किया है, यह बात असंख्य लोगोंके मुखसे हमने सुना है। किन्तु ऐसे कहनेवाले भी मरेंगे, उनकी चित्तवृत्ति भी परिवर्तित होगी। कुछ समय पश्चात् वे सहायता न कर सकेंगे। अतएव हम उनकी बात ग्रहण नहीं करेंगे। जो सर्वशक्तिमान हैं, जिनका आनुगत्य ग्रहण करनेपर सभी अमंगल दूर हो जायेंगे, नित्यकाल जिनकी कृपाका हमारे ऊपर वर्षण होगा, उन्हीं बलदेव प्रभुका हम आश्रय ग्रहण करेंगे। यद्यपि वर्तमान समयमें मायाके वशीभूत होनेकी योग्यता मैंने पायी है, तथापि उस दुर्बलताका परित्याग कर मैं श्रीबलदेव प्रभुकी कृपा प्राप्त करनेमें समर्थ हो सकूँ—आप लोग मुझपर ऐसा आशीर्वाद करें।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

(प्रतिष्ठाशा और कुटीनाटी)

१–सब कुछ त्याग करके भी किसे त्याग नहीं कर सकते ?

"सब कुछ त्याग करनेपर भी प्रतिष्ठाशाका त्याग करना अत्यन्त कठिन है। अतएव प्रवीण व्यक्तियोंको इसे त्याग करनेका प्रयत्न करना चाहिए।"

—'भजनरहस्य' २य याम साधन

२–शठ व्यक्ति महान् व्यक्तियोंका स्वभाव नकल करते हैं, उसका क्या उद्देश्य है ? आनुकरणिक चेष्टा क्या स्थायी होती है ?

'जो लोग शठ व्यक्ति हैं, वे अपने स्वभावको छिपाकर महान् व्यक्तिके स्वभावका नकल कर प्रतिष्ठा पानेकी चेष्टा करते हैं। किन्तु ऐसा अनुकरण स्थायी नहीं होता, कुछ दिनोंमें ही उनका अपना स्वभाव प्रकट हो जाता है।"

—'वैष्णव-स्वभाव' स० तो० ४।११

३–मौखिक दैन्य क्या प्रतिष्ठाशा-त्यागका प्रमाण है ?

"जब तक प्रतिष्ठाकी आशा त्याग नहीं कर सकते, तब तक वैष्णव बने हैं—ऐसा समझ नहीं सकते। केवल बातोंमें दीनता दिखलानेसे काम नहीं चलता। हम कहा करते हैं—'हम वैष्णवोंके दासोंके दास होनेके भी योग्य नहीं हैं'। किन्तु मन ही मन सोचते हैं कि श्रोता लोग यह सुनकर हमें शुद्ध वैष्णव कहकर सम्मान प्रदान करेंगे। हाय! प्रतिष्ठाकी आशा हमें छोड़ना नहीं चाहती।"

—'प्रतिष्ठाशा परिवर्जन'

ससंगिनी स० तो० ८।३

४–शान्तिकामी व्यक्ति संसार त्यागकर किस अनर्थसे पतित हो जाते हैं?

"प्रतिष्ठाकी आशा गृहस्थोंको अधिक होगी, ऐसा समझकर शान्तिपरायण व्यक्ति संसार छोड़कर वेष ग्रहण करते हैं। किन्तु उस अवस्थामें प्रतिष्ठाशा अधिक बलवती हो उठती है।"

—'प्रतिष्ठाशा–परिवर्जन,'

ससंगिनी, स० तो० ८।३

५–प्रतिष्ठाका प्रयास सबसे हीन क्यों है?

"प्रतिष्ठा पानेका प्रयास सबसे तुच्छ एवं हीन है। ऐसा होनेपर भी कई व्यक्तियोंके लिए यह त्याग करना दुःसाध्य है।"

६–कपटी व्यक्ति प्रतिष्ठा पानेके लिए क्या-क्या उपाय करते हैं?

"आचार्यकी प्रियता एवं साधुमण्डली की प्रतिष्ठा, साधारण लोगोंकी श्रद्धा तथा कालनेमिकी तरह कार्योद्धारकी आशासे एवं सम्मान पानेके लिए बहुतसे व्यक्ति कपटता कर भागवती रति या भगवत्प्रेमका नकल कर नृत्य, स्वेद, पुलक या रोमांच, आँसू, लोटपोट, कम्प एवं कभी-कभी भाव तक लक्षण दिखलाते हैं। किन्तु उनके हृदयमें सात्त्विक विकार नहीं है।"

—चै०शि० ५।४

७–'कुटीनाटी' किसे कहते हैं और उसका क्या फल है?

"कुटीनाटी शब्दमें 'कु-टी' एवं 'ना-टी' ये दो बातें हैं। मानसिक रोगद्वारा ग्रस्त व्यक्ति सभी विषयोंमें ही 'कु-टी' देखते हैं अर्थात् किसीने एक सरोवरमें स्नान किया किन्तु उसके निकट मल-क्षेत्र रहनेके कारण उस सरोवरका कुटी (दोष) समझकर सारा दिन उसी आलोचनामें व्यस्त रहे एवं कोई अच्छा विषय आलोचना नहीं कर पाये। 'शुचिवायु' एक प्रकार कुटी-नाटी का स्थल है। जिनमें यह वायु है, वे पृथिवीके किसी भी स्थानको पवित्र नहीं समझ सकते, किसी समयको शुद्ध नहीं समझ सकते एवं किसी व्यक्तिको भी शुद्ध वैष्णवके रूपमें स्वीकार नहीं कर सकते। शुद्धभक्तके स्मार्त्त (स्थूल नियम) विरुद्ध किसी आचरणको देखकर वे उन्हें वैष्णव नहीं मानते एवं उनका संग नहीं करते। यहाँ 'कु'-टी के ऊपर 'ना' टी उपस्थित हुई। नीचवर्णके साधुओं द्वारा प्रतिष्ठित भगवत्-विग्रहका प्रसाद नहीं पाना एक 'कुटीनाटी' है। कुटी-नाटी प्रबल रहनेपर मनमें खाद्य द्रव्योंसे सुख प्राप्त नहीं होता। कुटीनाटी एक प्रकारकी मानसिक पीड़ा है। वह पीड़ा रहने पर कृष्ण भक्ति होना कठिन है। वैष्णव-सेवा एवं वैष्णव-संग कुटीनाटी पीड़ित व्यक्तिके लिए बहुत ही कठिन है।"

—'कुटीनाटी' स० तो० ६।३

८–श्रीमन्महाप्रभु गौरांगदेवने किन-किन भक्तिके कंटकोंको 'कुटीनाटी' (कुटिलतायुक्त व्यवहार या कपटताविशेष) में गणना की है?

"श्रीश्रीमन्महाप्रभुके उपदेशमें कुटीनाटी परित्यागके लिए विशेष परामर्श है। उसमें कहीं-कहीं शास्त्र-निषिद्ध कार्यका आचार, जीव-हिंसा, प्रतिष्ठाशा आदि भक्तिबाधक वस्तुओंमें ही कुटीनाटी बतलायी गई है।"

—'कुटीनाटी' स० तो० ६।३

९–कुटीनाटी शब्दका अर्थ श्रीमन्महाप्रभु जीने कैसे किया है ?

"कुटीनाटी—इस शब्दका अर्थ श्रीमन्-महाप्रभुजीने 'यही अच्छा है, यही बुरा है' —इस वाक्यद्वारा किया है।"

'कुटीनाटी' स० तो० ६।७

१०–'कुटीनाटी' के वशीभूत व्यक्ति किस प्रकार नामापराधी या वैष्णवापराधी होते हैं ?

"कुटीनाटीके अधीन व्यक्तियोंका वर्णाभिमान और सौन्दर्याभिमानसे महामहाप्रसाद (वैष्णवोंके भुक्त-शेष या उच्छिष्ट) में, भक्तोंकी पदधूलिमें, और भक्तपदजलमें विश्वास नहीं होता। वे सर्वदा नामापराध या वैष्णवापराधके कारण दोषी हैं। अतएव उनके मुखमें हरिनाम होना कठिन है। कुछ व्यक्ति शुद्ध वैष्णवोंकी पीड़ा देखकर उनसे घृणा करते हैं। किन्तु श्रीमन्महाप्रभुजीने सनातन गोस्वामीसे कहा था–'हे सनातन ! तुम्हारे शरीरमें जो कण्डुरसा (खुजली जैसे सारे शरीरमें घाव बनकर उससे रस पड़ना) हुआ है, उससे तुम जैसे वैष्णव लोग घृणाके पात्र नहीं हैं।"

'कुटीनाटी, स० तो० ६।३

११–कैसे 'ताप' को कपटता कहा जा सकता है ?

"जहाँ ताप (शरीर में लगाये जाने वाले मुद्रा-चिह्नविशेष) का केवलमात्र शरीरको सजानेके लिए है, वहाँ कपटता ही धर्म है।"

—'पञ्चसंस्कार' स० तो० २।१

१२–कपटी व्यक्तियोंका देवदेवियोंकी पूजामें आग्रह क्यों है ?

"नैवेद्य खाद्य-सामग्री, विशेषकर बकरीके मांसादि पानेकी आशासे कल्पित देवदेवियोंके निकट बहुतसे धूर्त्त व्यक्ति भाव-भंगी प्रकाश कर कपटरतिके उदाहरणस्वरूप हो पड़ते हैं।"

—चै० शि० ५।४

१३–शास्त्रोंके भारवाही क्या कुटिल नहीं हैं ?

"परमार्थं विचारेऽस्मिन् बाह्यदोषविचारतः।
न कदाचिद्धत श्रद्धः सारग्राहिजनो भवेत्॥

इस ग्रन्थमें (कृष्णसंहितामें) परमार्थका ही विचार किया गया है। इसमें व्याकरण-अलंकारादि सम्बन्धित दोषसमूह ग्रहण नहीं करना होगा। इन बातोंको लेकर सारग्राही व्यक्ति वृथा आलोचना नहीं करते। इस ग्रन्थकी आलोचना करते समय जो व्यक्ति बाहरी दोषोंकी विशेषरूपसे समालोचना कर इस ग्रन्थके परमार्थसार संग्रहरूप प्रधान कार्यमें उदासीनता दिखलायें, वे इसके अधिकारी कदापि नहीं हैं। बालविद्यागत तर्क सभी गंभीर विषयमें अत्यन्त तुच्छ एवं नगण्य हैं।"

कृ० स० १०।१६, अनुवाद

१४–भक्तिमें शिथिलतारूप दोष कब आता है ?

'धन-शिष्यादिके उद्देश्यसे जो भक्ति प्रदर्शित की जाती है, वह शुद्धभक्तिसे अत्यन्त दूर स्थित है, अतएव वह भक्तिका अंग नहीं है।"

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

वर्त्तमान मानवका मतिभ्रम एवं उसका दूरीकरणोपाय

(गतांकसे आगे)

वह ऐसी संस्कृतिको जन्म दे रहा है या उसके प्रति निष्ठावान है जो सत् बुद्धिके द्वारा ग्राह्य नहीं मानी जा सकती। रहन-सहन, भाषा, व्यवहार, आचार-विचार, वेश-भूषा सभीमें अनोखी नवीनता बढ़ रही है। भारतीय प्राचीन संस्कृतिपर असांस्कृतिक अभारतीयताकी छाप लगाई जा रही है। प्राचीन आस्थाओंकी जड़ हिलाई जा रही हैं। देव समाराधनाकी पद्धति विकृत की जा रही है। विशुद्ध ज्ञान और भक्तिके सिद्धान्तोंकी प्राचीनताका परिवर्त्तन कर नवीन रूप दे उन्हें समाजके समक्ष रक्खा जा रहा है। पुरातनताका उपहास किया जा रहा है। यदि कहीं भारतीय संस्कृतिका प्रकाश या स्वरूप प्रकटरूपसे कुछ दीख पड़ता है, तो वह भी समाजको भ्रमित करनेकी एक नीतिसे पूर्ण है। वस्तुतः उसके मध्यमें दम्भ, स्वार्थ, अनैतिकता भरे आचरण, अहंभाव, अधिकार झाँकेसे दृष्टिगोचर होते हैं। मानव-मानवमें अपनेको श्रेष्ठ, महत्वशाली सिद्ध करनेकी लोकैषणा, ज्ञात-अज्ञात रूपसे भोगोंकी वितृष्णाका प्राबल्य बढ रहा है। विदेशसे उठी इस असांस्कृतिक, वैज्ञानिक, प्रलयकारी आँधीने मानवको पथभ्रष्ट, आचरणभ्रष्ट कर दिया है। उसे अब अर्थ एवं भोगोंके सम्पादनसे रुचि है; अधिकारों एवं अहंकारसे संमोह है

उसका इस ओरसे ध्यान ही हट गया है कि जिन भोगोंके लिए वह इतना श्रम कर रहा है, वे शाश्वत सुख, शान्ति, सन्तोषके देनेवाले नहीं हैं, आपात् रमणीय हैं। सभी प्रकारके प्रयत्न भी उसे सन्तुष्टि प्रदान करनेमें सहायक नहीं हो रहे हैं। क्या वे स्वयं अनुभव करते हैं कि उन्हें इच्छानुकूल साधन उपलब्ध नहीं होते। दैनिक वस्तुओंके अभावोंसे ग्रसित होकर पद-पदमें ठोकरें खाते हैं। लोकमें कतिपय लोगोंको साधन-सम्पन्न एवं सुखी देखकर निम्न वर्गके लोगोंके चित्तमें विद्रोहकी अग्नि प्रज्वलित होती है।क्योंकि वे श्रम करके भी विपत्तियों, दुःखोंको सहन करते हैं। एक वर्ग कुछ नहीं करता हुआ भी दूसरे निम्न वर्ग पर शासन कर रहा है। इस विषमतासे निम्न वर्गके व्यक्ति अनात्मवादिता की ओर झुक रहे है। वे आत्मज्ञानके अभाव, संस्कारोंकी विरतिसे, शक्तिक्षीण, वित्तहीन होकर स्वास्थ्यसे विरहित हो गये हैं। और तात्कालिक दूसरोंके सुखोंको, साधनोंको देखकर विचलित हो रहे हैं। उभय वर्गने निज बुद्धिको, निज ज्ञानको दूसरोंका सहयोगी बना दिया है। अपनी सर्वश्रेष्ठ नरदेहकी बलि देकर स्वार्थ, अधिकार, धनकी मोहकता में नश्वर भोगोंके लिए दौड़ लगा रहे हैं। इस सांसारिक मायाजालको भूल-भुलैयासे अब उसका निकलना कठिन सा हो गया है। इससे

छुटकारा पानेका कोई उपाय उन्हें नहीं दीख रहा है। इसमें उनकी आत्म-विस्मृति ही कारण है।

शास्त्रोंकी जीवन-रक्षक-उक्तियाँ, आप्तजनोंके अनुभवपूर्ण सत्य वचन, गुरुओंके उपदेश, शास्त्रीय सत्-सिद्धान्त उनके समक्ष टिकते नहीं, न उनकी बुद्धिको स्पर्श करते हैं, न हृदयको। आध्यात्मिक-तत्व कर्ण-कुहरोंमें प्रवेश कर यत्-किंचित् सद्भावोंकी तरङ्गोंमें कुछ क्षणके लिए हलचल उत्पन्न करते हैं, पर दूसरे ही क्षण विलीन हो आते हैं। मानव फिरसे निरन्तरके अभ्यासवश भौतिक सुखोंको ही देखता है, उनके सम्बन्धमें ही सोचता है, सांसारिक बातोंको सुनता है। ऐसे पुरुषोंको ही अपना हितैषी मानता है। उन्हींसे सम्पर्क स्थापित करता है जिनमें मायासे परिवेष्टित भौतिक सुखोंकी प्रचुरता है। आत्मनिरीक्षण न कर अनात्मवादियोंके चरित्रोंका, उनके कृत्योंका निरीक्षण कर तदनुकूल अपना निर्माण करता है। जीवनके अमूल्य अधिकांश क्षणोंको व्यापार-वृद्धि, विविध उद्योगोंके प्रसार, न्याय-अन्यायपूर्ण कपटताका आश्रय लेकर अर्थ सम्पादन कर विभिन्न भोगों और तत्सम्बन्धी साधनोंमें उनका व्यय करता है। उसके लिए उसे भले ही सामयिक कुटिलतापूर्ण राजनीतिका, अधर्मका आश्रय लेना पड़े, अनीति या परधर्मको स्वीकार करना पड़े, वह अपने कार्यक्रमोंमें नितान्त व्यस्त है। उसे अपने कार्योंसे पारमार्थिक कार्योंके लिए एक क्षणका भी समय नहीं, और क्या अवश्यंभावी मृत्युको भी भूल गया है।

कभी-कभी दैहिक, दैविक, और भौतिक कष्टोंके अकस्मात् आ पड़ने पर, किसीसे पराजित होने पर, विपत्तियोंके समय, संस्कार-वश सद्भावनाएँ हृदयमें जागृत होती हैं, पर मद्यपके विचारोंकी भाँति वे स्थिरताको ग्रहण नहीं करतीं। भारतीय संस्कृति-रज्जु उसे बाँधनेमें सफल नहीं होती।

इस स्थितिके परिवर्त्तन हेतु सत् आचार्य, वैष्णव, सन्त, महापुरुष, भक्त प्रयत्नशील अवश्य हैं, एकदम उदासीन नहीं; पर जिस तीव्रतासे यह रोग बढ़ रहा है, उसका उपचार उस रूपमें नहीं हो रहा है। जिस प्रकार सफल, सिद्ध, पीयूषपाणि, कुशल, क्रियासु वैद्य मृत्युके मुखमें पहुँचते हुए मानवको अपनी अनूठी चिकित्सा-पद्धति, सद्ज्ञान, सद्-उपचारके द्वारा लौटा लेते हैं, उसी प्रकार भव-रोगके शामक आचार्यों, वैष्णवोंका भी यह कर्त्तव्य ही है कि वे अपने परमार्थवादी, लोकहितैषी, जगदुद्धारक सिद्धान्तोंको यथार्थरूपसे निर्धारित कर एक मत हो आगे बढ़ें और असांस्कृतिक दलदलसे उनका उद्धार करें। यद्यपि आधुनिक मानवको भक्ति, विशुद्ध तत्त्व-ज्ञान, निष्काम कर्मके सुदृढ़ शास्त्रीय तत्व कटु-औषधिके समान अरुचिकर प्रतीत होंगे, पर समयके अनुसार येन-केन-प्रकारेण उनका नित्य-प्रयोग, उचित स्वभावानुकूल पथ्य बढ़े हुए राजरोगके शमनमें सहायक होगा। यह तो सर्वविदित बात है कि यह रोग स्वल्प समयमें विनष्ट नहीं होगा; वर्षोंके उपचारसे, सतत परिश्रमसे ही शान्त होगा। रोगीकी शुद्धिके लिए उनके असंस्कारित, एवं मिथ्या आहार-विहार, व्यवहारका भी संशोधन करना होगा। प्रतिदिन समयपर औषधि-सेवन, उचित आहार-विहार रोगीके निरोगका कारण बनता है। उसमें परिवारके वरिष्ठ जनोंकी सावधानी भी अपेक्षित होती है, उन्हें आलस्य-रहित होकर परिवारमें निर्दिष्ट औषधक

सेवन कराना चाहिये। उसी प्रकार निर्दिष्ट पुरुषोंको भवरोगकी शान्तिके लिए शास्त्रोंमें वर्णित सद्वचनोंका अपनी तपःसाधना, त्यागमयी जीवन-गरिमासे परिपूत कर उसकी स्थितिके अनुसार उन्हें भी उपदेशोंका प्रयोग करना पड़ेगा और परिवारके वरिष्ठोंको इसका आदेश देना होगा कि वे सावधानता-पूर्वक अपनी जीवन-चर्या बनाकर भावी पीढ़ीके लिए जीवन-रक्षक बनें। अपने परिवारके सदस्योंको विपरीत मार्गसे हटाकर सन्मार्गकी ओर प्रवृत्त करें, जिससे आवागमनका चक्र ही नहीं, दुःखों, विपत्तियोंके जञ्जालसे मानवकी निर्मुक्ति हो।

जब पत्थरपर साधारण सी रस्सीकी प्रतिदिन की रगड़, उस पर चिह्न कर देती है; फिर उपदेशोंमें तो महती शक्ति है, महान प्रकाश है, केवल योग्यतानुसार उनका प्रयोग करना है।

मुझे जब भी सन्तों, आचार्यों, वैष्णवोंकी चरण-धूलिमें बैठनेका अवसर मिला है या अल्प बुद्धिके अनुसार ही शास्त्रोंकी पंक्तियों का अध्ययन कर संस्कारवश कुछ समझ सका हूँ, तो उससे यही धारणा स्थिर हुई है कि जब तक मानव आत्म-तत्वसे अपरिचित है, जीव अपने स्व-स्वरूपको नहीं पहिचानता, परम-कारुणिक प्रभुकी सत्ताके ज्ञानसे मूढ़ है, तब तक वह प्रकृतिसे तथा पशु पक्षियोंसे भी हीन है। जिस शरीरपर वह अभिमान करता है, वह मानवीय भौतिक शरीर ही उसका नाशवान है। आश्चर्य इस बातका है कि वह यह भूल गया है कि जिस पर वह इतना इतराता है, इतना संग्रह करता है, विशाल महल बनाता है, महती भूमिका स्वामी बनता है, अपनेको सर्वश्रेष्ठ बनानेके लिए अथक परिश्रम करता है, उसका यह शरीर मृत्युका खिलौना है—

मृत्योः क्रीड़नका इव, बुद्बुदा इव तोयेषु।
मशका इव जन्तुषु, जायन्ते मरणायैव।

अस्थियाँ इस शरीरकी आधार स्तम्भ हैं। रस-नाड़ी रूप रस्सियोंसे यह बंधा हुआ है। ऊपरसे इस पर माँस और रक्त थोपकर इसे चर्मसे ढक दिया है। इसके प्रत्येक अंगसे दुर्गन्ध आती है, क्योंकि यह मल-मूत्रका पात्र है।

वृद्धावस्था और शोकके कारण यह परिणाममें दुःखजनक ही है, रोगोंका तो घर ही है। यह निरन्तर किसी न किसी कामनासे पीड़ित रहता है, कभी इसकी तृप्ति नहीं होती। इसे धारण किये रहना भी एक भार है। इसके रोम-रोममें दोष भरे हुए हैं। नष्ट होनेमें इसे एक क्षण भी नहीं लगता। अन्तमें इसे यदि गाड़ दिया जाता है, तो इसमें कीड़े पड़ जाते हैं, कोई पशु खा जाय, तो यह विष्ठा हो जाता है; अग्निमें जला दिया जाय, तो भस्मकी ढेरी हो जाता है। तीन गतियाँ इसकी बताई हैं। ऐसे अस्थिर शरीरसे मनुष्य अविनाशी फल देनेवाला कार्य क्यों नहीं बना लेता? जो अन्न प्रातःकाल पकाया जाता है, वह सायंकाल तक बिगड़ जाता है फिर उसीके रससे पुष्ट हुए शरीरकी नित्यता कैसी?

काल अपनी सहस्त्र भुजाओंको लेकर उसके चारों ओर घूम रहा है। उसने जीवको ग्रास करनेके पुरातन साधनोंके अतिरिक्त नये वैज्ञानिक साधन भी बना लिए हैं। जैसे

मोटर, वायुयान, जहाज, जल, पर्वत, अग्नि, वायु, साइकिल आदि विभिन्न रोग। उनसे वह मानवको अपना अतिथि बना लेता है। यदि जीवन-धारणकी बात कही जाय तो—

तरवः किं न जीवन्ति
भस्त्रा किं न श्वसन्त्युत।
न खादन्ति न मेहन्ति।
किं ग्राम्य पशवोऽपरे॥

(भा० द्वि० ३।८)

क्या वृक्ष नहीं जीते ? क्या लुहारकी धौंकनी साँस नहीं लेती ? क्या गाँवके अन्य पालतू पशु मनुष्यकी भाँति खाते, पीते, मैथुन नहीं करते ?

मनुष्यकी शक्ति, बुद्धिमत्ता, सुन्दरता, ज्ञान आदिपर विचार करें, तो वह सबसे हीन दशाका प्राणी है। जिस शरीरको मानव प्रतिक्षण सजाता है, जिसकी पूर्ति या वृद्धिके लिए महान श्रम करता है, जिसके लिए नश्वर क्षणिक भोगोंको जुटाता है, कलह-प्रपञ्च करता है, हिंसा करता है, अनैतिक आचरण करता है, दूसरेसे अपनेको अधिक सुखी, धनी, मानी बनानेका यत्न करता है, अपनेको बुद्धिमान, शक्तिसम्पन्न समझता है, परन्तु वह है क्या ? उससे तो पिपीलिका कितनी बुद्धिमती है जो धूलि-कणोंमें मिली शक्करको सावधानीसे निकाल लेती है, मत्स्य नीरमें मिले हुए दुग्धको पीकर नीरको छोड़ देती है, हंसका नीर-क्षार-विवेक प्रसिद्ध है। दौड़में मृग, श्वान, अश्व, आदिकी समता नहीं कर सकता। शक्तिमें गज सिंह, बाघ, प्रसिद्ध हैं। नेत्रोंकी उपमा मृग, मत्स्य, खञ्जनसे दी जाती है। गतिमें हस्तिनी, हंस; केशोंके लिए नागिन, भ्रमर; दन्तके लिए कुंदकली, मोती; जंघाके लिए कदली; नासिकाके लिए शुक; भौंहके लिए इन्द्रधनुष आदिकी उपमा कवियोंके द्वारा दी गयी है। पशुओंकी चर्म एवं अन्य वस्तुएँ भी काममें आती हैं, पर मनुष्यकी कोई वस्तु कामकी नहीं। शनैः शनैः उससे धार्मिकता, नागरिकता, समाजोचित मानवता भी विलुप्त हो रही है, पर अभिलाषा चरम कोटिपर पहुंच रही है। उसकी पूर्ति उससे नहीं हो रही। वह छटपटाकर विकल होकर रह जाता है। समाजके अनेक बुद्धिवादी जन यह कहते सुने गये हैं कि मानवका विकास हो रहा है, वह बर्बर मानवसे सभ्य, सुशिक्षित मानवकी श्रेणीमें आ रहा है, अन्धविश्वास उठता जा रहा है। पर सदसत् विचारशील विद्वान, आचार्य ऐसा नहीं मानते। उनकी दृष्टिमें ही नहीं, सभ्य कहलाने वाले अन्य लोगोंकी दृष्टिमें भी मानवकी नैतिकता, उसका स्वास्थ्य, उसका गम्भीर अध्ययन, विवेक, सदाचार, सच्चरित्रता, अनुशासन-पालन आदि सद्गुण धीरे-धीरे उससे दूर हो रहे हैं। अब उसकी श्रेणी का निर्धारण और भी कठिन-सा हो गया है। वह जिन भोगोंकी, जिस धनकी, जिन अधिकारोंकी प्राप्तिमें पागल हो रहा है, वे चिरस्थायी नहीं है। ऐसा सभीने देखा या सुना है कि हरे-भरे विशाल नगर भी विज्ञानकी करामात द्वारा भस्मसात् कर दिये गये हैं, उस समय किसी का भी ध्यान नहीं रक्खा गया।

मनुष्यको यह आकांक्षा भी निराधार है कि मैं इच्छानुसार भोगोंको भोग लूँगा। क्योंकि ऐसा देखा गया है कि सम्पत्तिके परिपूर्ण होने, पारिवारिक जनोंकी बहुलता होने, सेवकोंके होने पर भी प्राणी अन्न का एक कण मुखमें नहीं ले सकता। विशाल भवनके एक कक्षमें उसे डाल दिया जाता है, वह खटिया पर पड़ा एक दो दिन नहीं, बीसों वर्षोंतक नरक-यातना भोगता रहता है, सुन्दरी स्त्री, परिवारके जन उससे घृणा करते हैं, उसकी मृत्यु चाहते हैं। चिकित्सालयोंकी दुर्दशाओंको कौन नहीं जानता ? राजनीतिका भी यही रूप है। जहाँ पर च्युत हुए कि कोई पूछने वाला नहीं। आज जिसे हम धनिककी चरम सीमा पर पाते हैं, उसे ही कल भिखारीके रूपमें। युगानुकूल ऐसे परिवर्त्तन होते दीख रहे हैं। कल जो राजा था, वह आज भिखारी है। जो पहले भिखारी था, मूर्ख था, वह आज शासन कर रहा है। किसे स्थायी कहा जाय ? यह चार दिनकी चमक ही तो है। कृत्रिम सुखोंमें, भोगोंमें अपनेको भूलकर उन्मत्त हो जाना क्या ठीक है ? इसे अज्ञानता की चरम सीमा ही कहना चाहिये। बुद्धिवादके आतपसे हृदयकी भावनाकी सरिता सूख गई है, प्रेम विलुप्त हो गया है। आत्म-प्रकाश आच्छादित है। जीवको अपनी स्थितिका पर्यवेक्षण करना ही चाहिये और समय पर अपना परिवर्त्तन कर लेना चाहिये। यह स्मरण करना चाहिये कि अनेक युगोंके सत्-संकल्प, तपःसाधनाके कारण विविध कीट-पतंग आदि अनेकानेक योनियोंमें भ्रमण करनेके पश्चात् यह नर देह मिली है। अतः हमें इसे प्राप्त कर ऐसे तत्वोंका संग्रह करना चाहिये जिससे हम आत्म-शान्ति प्राप्त करें और विविध निम्न योनियोंमें न जाय। भोगोंके लिए यह देह नहीं है। इसे तो पारमार्थिक साधन करते हुए भगवन्नाम कीर्तन या भगवद्भक्तिमें ही लगाना चाहिए। इसके अतिरिक्त उद्धारका और कोई दूसरा साधन नहीं है।

संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षो-
र्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण
पुंसो भवेद्विविधदुःखदवार्दितस्य॥
(भा० १२।४।४०)

अर्थात् जो जन अत्यन्त दुस्तर संसार-सागरसे पार जाना चाहते हैं अथवा जो लोग अनेकों प्रकारके दुःख-दावानलसे दग्ध हो रहे हैं, उनके लिए पुरुषोत्तम भगवानकी लीला-कथा रूप रसके सेवनके अतिरिक्त और कोई साधनरूपी नौका नहीं है। वे केवल लीला-रसायनका सेवन करके ही अपना मनोरथ सिद्ध कर सकते हैं।

पतितःस्खलितश्चार्तः श्रुत्वा वा विवशो ब्रुवन्।
हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात्॥
सङ्कीर्त्यमानो भगवाननन्तः
श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम्।
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं
यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः॥
(भा० १२।१२।४७-४८)

जो मनुष्य गिरते, पड़ते, फिसलते, दुःख भोगते अथवा छींकते समय विवशतासे भी ऊँचे स्वरसे 'हरये नमः' बोल उठता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

यदि देश, काल, वस्तुसे अपरिच्छिन्न भगवान् श्रीकृष्णके नाम, लीला, गुण आदिका संकीर्त्तन किया जाय, तो वे स्वयं ही हृदयमें

आ विराजते हैं और श्रवण तथा कीर्त्तन करने वाले पुरुषके सारे दुःख मिटा देते हैं, ठीक वैसे ही जैसे सूर्य अंधकारको एवं आंधी बादलोंको तितर-बितर कर देती है।

जिस वाणीके द्वारा घट-घटवासी भगवानके नाम, गुण आदिका उच्चारण नहीं होता, वह वाणी भावपूर्ण होनेपर भी निरर्थक, सारहीन, असुन्दर है।

तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं
तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम् ।
तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां
यदुत्तमःश्लोकयशोऽनुगीयते ॥
(भा० १२।१२।५०)

जिन वचनोंके द्वारा भगवानके परम पवित्र यशका गान होता है, वे ही परम रमणीय, रुचिकर, एवं प्रतिक्षण नवीन जान पड़ते हैं। उनसे अनन्तकाल तक परमानन्द की अनुभूति होती है। मनुष्योंका सारा शोक चाहे समुद्रके विस्तार वाला, गहरा क्यों न हो, वह उन वचनोंके प्रभावसे सूख जाता है।

रस-भाव-अलंकार युक्त जिस वाणीसे जगतको पावन करनेवाले भगवान श्रीकृष्णके यशका कभी गान नहीं होता, वह कौओंके लिए उच्छिष्ट फेंकनेके स्थानके समान अत्यन्त अपवित्र है।

अतएव इस युगमें मानवके उद्धारका, उसके बढ़ते हुए पाप-तापोंकी शान्तिका एकमात्र यही सर्वोत्तम उपाय है कि वह संसारके सारे कार्योंको करता हुआ भी भगवानके परमपुनीत चरण-कमलोंका आश्रय सर्वदाके लिए ग्रहण करें।

अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः
क्षिणोत्यभद्राणि च शं तनोति ।
सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्ति
ज्ञानञ्च विज्ञानविरागयुक्तम् ॥
(भा० १२।१२।५५)

भगवान श्रीकृष्णके चरणोंकी अविचल स्मृति सारे, पाप, ताप और अमंगलोंको नष्ट कर देती है और परम शान्तिका विस्तार करती है। उसीके द्वारा अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। भगवानकी भक्ति प्राप्त होती है एवं परम वैराग्यसे युक्त भगवानके स्वरूपका ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त होता है। उसका जीवन सफल हो जाता है। यही इस संसारमें मानव देह धारणका चरम फल है कि वह भगवान की भक्ति करें और लीला-गुण-चरित्रोंका स्मरण करता हुए भगवन्नामोंका कीर्त्तन करें।

—बागरोदी श्रीकृष्णचन्द्र शास्त्री, काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न

सन्दर्भ-सार

(भक्ति-सन्दर्भ—१६)

जो ज्ञानी पुरुष हैं, उनकी तो कोई बात ही नहीं है। बल्कि भगवान् श्रीहरिके प्रति भली प्रकारसे चित्त लग जानेपर कीट-पक्षी-पशु आदि नीच योनिगत जीव भी उत्तम गति प्राप्त करते हैं।

भक्ति करनेवाले सभी कर्त्ताओंमें आचारवान एवं दुराचारी, ज्ञानी एवं अज्ञानी, विरक्त एवं आसक्त, मुमुक्षु (मुक्ति के इच्छुक) एवं मुक्त, साधक एवं सिद्ध, भगवान्‌की पार्षदता या नित्यसेवा-प्राप्त एवं उसमें नित्य अवस्थित—इन सभी प्रकारके भक्तोंमें पात्रोंके विचारके बिना ही साधारण रूपसे भक्तिकी स्थिति देखकर भक्तिकी सभी स्थानोंमें ही विद्यमानता जानी जाती है।

बाहरी दृष्टिसे दुराचारी व्यक्तिमें भक्ति की स्थिति—

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः॥

(गीता ९।३०)

बाहरी रूपसे अत्यन्त दुराचारी जान पड़ने पर भी जो व्यक्ति मेरा ऐकान्त भावसे भजन करते हैं, उन्हें साधु ही जानना चाहिये। क्योंकि उन्होंने मेरे लिये जो व्यवसाय या संकल्प ग्रहण किया है, वह सर्वप्रकारसे सुन्दर एवं उत्तम है।

बाहरी दृष्टिसे दुराचारी होने पर भी जब भक्तिमें कोई बाधा नहीं पहुँचती, तब सदाचारी होकर भजन करनेपर तो बात ही नहीं है। यही 'अपि' शब्द का यहाँ तात्पर्य है।

ज्ञानी और अज्ञानी व्यक्तियोंमें—

ज्ञात्वाऽज्ञात्वाथ ये वै मां
यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः।
भजन्त्यनन्यभावेन ते
मे भक्ततमा मताः॥

(भा० ११।११।३३)

मेरा जो असीम स्वभाव, मेरा जो स्वरूप, मेरी जो सच्चिदानन्दमयता—इन्हें जानकर हो या बिना जाने ही हो, जो व्यक्ति अनन्य भावसे मेरा भजन करते हैं, वे लोग मेरे भक्त श्रेष्ठ हैं, यही जानना होगा।

विष्णुधर्ममें भी कहा गया है—

हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः।
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः॥

आग जिस प्रकार बिना इच्छाके स्पर्श प्राप्त होनेपर भी उसी क्षण ही उन द्रव्योंको जला डालती है, उसी प्रकार यदि दुष्टचित्त व्यक्ति भी भगवान् श्रीहरिका स्मरण करें, तो श्रीहरि उनके सभी पापोंको दूर कर देते हैं।

विरक्त और आसक्त में—

बाध्यमानोऽपि मद्भक्तो विषयैरजितेन्द्रियः।
प्रायः प्रगल्भया भक्त्या विषयैर्नाभिभूयते ॥
(भा० ११।१४।१८)

उत्तम भक्तोंकी बात तो दूर रहे, प्राकृत या कनिष्ट भक्त भी इन्द्रिय जय करनेमें असमर्थ होकर विषयोंद्वारा आकर्षण किये जाने पर भी वीर्यवती भक्तिके प्रभावसे विषयोंके वशीभूत नहीं होते।

मुमुक्षु और मुक्तमें—

मुमुक्षवो घोररूपान् हित्वा भूतपतीनथ ।
नारायणकलाः शान्ता भजन्ति ह्यनसूयवः॥
(भा० १।२१।२६)

मुक्तिकामी व्यक्ति घोर रूपवाले भूतपति आदियोंका परित्याग कर उनके प्रति असूया या मत्सरताशून्य होकर शान्तमूर्त्ति नारायण या उनके अंश सभीका (उनके अवतारोंका) भजन करते हैं।

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः ॥
(भा० १।७।१०)

श्रीहरि ऐसे रूप और गुण युक्त हैं कि आत्माराम मुनि लोग जो केवल अपनी आत्माके आनन्दमें तृप्त हैं एवं सभी विषयोंमें आसक्तिरहित हैं, वे भी उरुक्रम (असीम विक्रम जिनका है ऐसे) भगवान्‌की अहैतुकी भक्ति किया करते हैं।

असिद्ध और सिद्धमें—

केचित् केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणः।
अघं धुन्वन्ति कार्त्स्न्येननीहारमिव भास्करः॥
(भा० ६।१।१५)

सूर्य जिस प्रकार हिमराशि या कुहरेको नष्ट कर देते हैं, उसी प्रकार वासुदेव-परायण कोई-कोई महात्मा पुरुष केवला या अनन्य भक्तिके द्वारा सभी अनर्थोंका नाश कर डालते हैं।

न चलति भगवत्पदारविन्दात
लवनिमिषार्द्धमपि स वैष्णवाग्रगण्यः।
(भा० ११।२।५७)

जो अत्यन्त सामान्य निमिषार्द्धकाल (पलक गिरनेका आधा समय) भी भगवान्‌के चरणकमलोंसे विचलित नहीं होते, वे ही वैष्णवप्रधान हैं।

भगवान्‌की नित्यसेवा-प्राप्त व्यक्तियोंमें—

मत्सेवया प्रतीतं ते सालोक्यादि चतुष्टयम्।
नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत् काल विप्लुतं ॥
(भा० ९।४।६७)

मेरी सेवाके द्वारा परिपूर्णकाम भक्त लोग कालद्वारा परिवर्त्तनशील अनित्य, नश्वर दूसरे-दूसरे विषयोंकी बात ही क्या कहें, मेरी सेवा के प्रभावसे स्वयं उपस्थित या बिना इच्छाके प्राप्त सालोक्यादि चारों मुक्तियोंकी भी इच्छा नहीं करते।

नित्य पार्षदोंसे—

वापीषु विद्रुमतटास्वमलामृताप्सु
प्रेष्यान्विता निजवने तुलसीभिरीशम्।
अभ्यर्चती स्वलकमुन्नसमीक्षणवक्त्रं
उच्छेषितं भगवतेत्यमतांग यच्छ्रीः ॥
(भा० २२।३।१५)

हे देवताओ! वैकुण्ठलोकमें लक्ष्मीदेवी अपनी सेविकाओंके साथ मिलित होकर सुन्दर-

सुन्दर वृक्ष एवं मणिमय तटयुक्त अमृतमय निर्मल जलपूर्ण सरोवरोंके तीरमें, अपने विहारस्थली उपवनोंमें तुलसीद्वारा श्रीनारायणकी पूजा करते-करते सरोवर जलमें प्रतिबिम्बित, सुन्दर अलकावली (घुंघराले केशसमूह) और सुन्दर नासिका शोभित अपना वदन-कमल देखकर वे यह समझने लगीं कि उनके पति भगवान् श्रीनारायण उन्हें चुम्बन कर रहे हैं।

सभी वर्षोंमें (नवों भूखण्डोंमें) सभी भुवनोंमें, सभी ब्रह्माण्डोंमें, सर्वत्र एवं सभी अवस्थाओंमें ही भक्त लोग भगवान्‌की उपासना कर रहे हैं, यह अटल सत्य श्रीमद्भागवतादि शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है। इसके द्वारा सभी देशोंमें ही भक्तिकी स्थिति है, यह जानना होगा।

सभी इन्द्रियोंमें भक्तिकी स्थिति—

मानसेनोपचारेन परिचर्य हरिं मुदा ।
परेऽवाङ्मनसागम्यं तं साक्षात् प्रतिपेदिरे ॥

ब्रह्मादि देवता भी मानसोपचार द्वारा परमानन्दके साथ श्रीहरिकी सेवा कर वाक्य एवं मनके अगोचर उन श्रीहरिका साक्षात् दर्शन प्राप्त किये थे।

सभी द्रव्योंमें भक्तिकी स्थिति—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं
यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृत-
मश्नामि प्रयतात्मनः ॥
(गीता ९।२६)

प्रयत्नशील एवं ऐकान्तिक भक्त भक्ति पूर्वक मुझे पत्र, पुष्प, फल या जल अथवा जो कुछ भी समर्पण करें, मैं उस भक्ति द्वारा प्रदान किये हुई वस्तुका प्रीतिपूर्वक भोजन किया करता हूँ।

सभी क्रियाओं में भक्तिकी स्थिति—

श्रुतोऽनुपठितो ध्यात आहृतोवानुमोदितः ।
सद्यः पुनाति सद्धर्मो देव विश्वद्रुहोऽपि हि: ॥
(भा० ११।२।१२)

इस सद्धर्मका (भागवत धर्मकी बातका) एकवार श्रवण, पाठ, ध्यान, आदर या अनुमोदन करने पर क्या देवद्रोही, क्या विश्वद्रोही, सभी ही शीघ्र ही पवित्र हो जाते हैं।

यत् करोषि यदश्नोसि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्वमदर्पणम् ॥
(गीता ९।२७)

हे अर्जुन! तुम जो कुछ करते हो, जो कुछ खाते हो, जो कुछ होम करते हो, जो कुछ दान करते हो, जो कुछ तपस्या करते हो, वह सभी ही मुझे अर्पण करो। ऐसे भक्त्याभास और भक्त्याभासरूप अपराधद्वारा अजामिल एवं चूहेका उद्धार हुआ था।

सभी कार्योंमें भक्तिकी स्थिति—

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।
न्यूनं संपूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥

जिनके स्मरण और कीर्त्तन प्रभावसे तपस्या, यज्ञ और क्रिया आदिमें जो अभाव या कमी है, वह शीघ्र ही सम्पूर्णता प्राप्त करती है, मैं उसी अच्युत भगवान्‌की वन्दना करता हूँ।

सभी फलोंमें भक्तिकी स्थिति—

अकाम सर्वकामो वा मोक्षकामो उदारधीः ।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥
(भा० २।३।१०)

उदारबुद्धिपरायण व्यक्ति निष्काम, सभी प्रकारकी कामनायुक्त या भले हो मोक्षकामी क्यों न हो, तीव्र भक्तियोगद्वारा परमपुरुष श्रीहरिका भजन करेंगे ।

जिस प्रकार वृक्षके मूल या जड़में जल सींचनेपर उसके स्कन्ध शाखादि तृप्ति प्राप्त करते हैं, प्राणमें (मुखके द्वारसे) आहार देने पर सभी इन्द्रियाँ प्रसन्न हो जाती हैं, उसी प्रकार भगवान् अच्युतकी पूजा करनेसे ही सभीकी पूजा हो जाती है ।

अर्चिते देवदेवेशे शंखचक्रगदाधरे ।
अर्चिताः सर्वदेवाः स्युर्यतः सर्वगतो हरिः ॥
(स्कन्द-पुराण)

देवदेवेश शंखचक्रगदा धारण करनेवाले श्रीहरिकी पूजा होनेपर सभी देवताओंकी पूजा हो जाती है, क्योंकि वे सर्वान्तर्यामी हैं ।

जो व्यक्ति इस प्रकार भजन करते हैं (कर्तृकारक), भगवान्‌के उद्देश्यसे जो कुछ दान करते हैं (कर्मकारक), जिस उपायसे भक्तिकी जाती है (करणकारक), भगवत्प्रीतिके लिये जो कुछ समर्पण या सम्प्रदान किया जाय (सम्प्रदान कारक), जो सभी गौ आदिसे दूध आदि लेकर श्रीभगवान्‌को निवेदन किया जाय (अपादान कारक), जिस देश में या जिस कुलमें कोई भक्तिका अनुष्ठान करते हैं (अधिकरण कारक), पुराणोंमें उन सभीकी कृतार्थता देखी जाती है । इसकेद्वारा सभी कारकोंमें भक्तिकी विद्यमानता देखी जाती है । इसके द्वारा भक्तिकी सार्वत्रिकता अर्थात् सभी देश एवं सभी पात्रोंमें स्थिति सिद्ध हुई ।

त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

बंदौ चरन-सरोज तिहारे

बंदौ सरन-सरोज तिहारे ।
सुन्दर स्याम कमल-दल-लोचन ललित त्रिभंगी प्रान पियारे ॥
जे पद-पदुम सदा सिवके धन, सिन्धु-सुता उरतें नहिं टारे ।
जे पद-पदुम तात-रिस-त्रासत, मन-बच-क्रम प्रह्लाद सँभारे ॥
जे पद-पदुम-रस-जल-पावन-सुरसरि-दरस कटत अघ भारे ।
जे पद-पदुम-परस रिषि-पतिसी, बलि, मृग, ब्याध, पतित बहु तारे ॥
जे पद-पदुम रमत बृन्दाबन अहि-सिर धरि, अगनित रिपु मारे ।
जे पद-पदुम परसि ब्रज-भामिनी सरबस दै, सुत-सदन बिसारे ॥
जे पद-पदुम रमत पाण्डव-दल, दूत भए, सब काज सँवारे ।
सूरदास तेई पद-पंकज त्रिविध-ताप-दुख हरन हमारे ॥

(भक्तप्रवर सूरदासजी)